

असुरसुरनरेन्द्रैः खेचरेन्द्रैः प्रपूज्यो जिनपतिरिह भक्त्या सर्वसन्देहहर्ता।
तदुदितवरवाणी सारसौख्यस्य खानिर्दिशतु मम शिवानि श्रीप्रभाचन्द्रदेवः ॥३३॥
इति कथाकोशे स्तेयदोषस्य श्रीभूतिकथा समाप्ता।

२८. नीली-कथा

अथ श्रीजिननाथस्य नत्वा पादद्वयं हितम्। चतुर्थाणुव्रताख्यानं वक्ष्ये नीलीसमाश्रितम् ॥१॥
क्षेत्रेऽस्मिन् भारते पूते लाटदेशे मनोहरे। श्रीमत्सर्वज्ञनाथोक्त-धर्मकार्यैरनुत्तरे ॥२॥
पत्तने भृगुकच्छाख्ये सर्ववस्तुशतैर्भृते। राजाभूद्वसुपालाख्यो सावधानः प्रजाहिते ॥३॥
श्रेष्ठी श्रीजिनदत्तोभू-द्वणिक्सन्दोहसुन्दरः। श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्राणां चरणार्चनतत्परः ॥४॥
तत्प्रिया जिनदत्ताख्या साध्वी सद्धानमण्डिता। नीली नाम्नी तयोः पुत्री मुनीनामिव शीलता ॥५॥

वे जिनभगवान्, जो सब सन्देहों के नाश करने वाले और स्वर्ग के देवों और विद्याधरों द्वारा पूज्य हैं, वह जिनवाणी जो सब सुखों की खान है और मेरे गुरु श्रीप्रभाचन्द्र ये सब मुझे मंगल प्रदान करें, मुझे कल्याण का मार्ग बतलावें ॥३३॥

२८. नीली की कथा

जिनभगवान् के चरणों को, जो कि कल्याण के करने वाले हैं, नमस्कार कर श्रीमती नीली सुन्दरी की मैं कथा कहता हूँ। नीली ने चौथे अणुव्रत ब्रह्मचर्य की रक्षा कर प्रसिद्धि प्राप्त की है ॥१॥

पवित्र भारतवर्ष में लाटदेश एक सुन्दर और प्रसिद्ध देश था। जिनधर्म का वहाँ खूब प्रचार था। वहाँ की प्रजा अपने धर्म कर्म पर बड़ी दृढ़ थी। इससे इस देश की शोभा को उस समय कोई देश नहीं पा सकता था। जिस समय की यह कथा है, तब उसकी प्रधान राजधानी भृगुकच्छ नगर था। वह नगर बहुत सुन्दर और सब प्रकार की योग्य और कीमती वस्तुओं से पूर्ण था। इसका राजा वसुपाल था और वह जिससे अपनी प्रजा सुखी हो, धनी हो, सदाचारी हो, दयालु हो इसके लिए कोई बात का कष्ट न हो इसका सदा प्रयत्नशील रहता था ॥२-३॥

यहीं एक सेठ रहता था। उसका नाम जिनदत्त था। जिनदत्त की शहर के सेठ साहूकारों में बड़ी इज्जत थी वह धर्मशील और जिनभगवान् का भक्त था। दान, पूजा, स्वाध्याय आदि पुण्यकर्मों को वह सदा नियमानुसार किया करता था। उसकी धर्मप्रिया का नाम जिनदत्ता था। जैसा जिनदत्त धर्मात्मा और सदाचारी था, उसकी गुणवती साध्वी स्त्री भी उसी के अनुरूप थी और इसी से इनके दिन बड़े ही सुख के साथ बीतते थे। अपने गार्हस्थ्य सुख को स्वर्ग सुख से भी कहीं बढ़कर इन्होंने बना लिया था। जिनदत्ता बड़ी उदार प्रकृति की स्त्री थी। वह जिसे दुःखी देखती उसकी सब तरह सहायता करती और उनके साथ प्रेम करती। इसके सन्तान में केवल एक पुत्री थी। उसका नाम नीली था। अपने माता-पिता के अनुरूप ही इसमें गुण और सदाचार की सृष्टि हुई थी। जैसे सन्तों का स्वभाव पवित्र होता है, नीली भी उसी प्रकार बड़े पवित्र स्वभाव की थी ॥४-५॥

तत्रैवान्यो वणिग्जातो मिथ्यादृष्टिर्विनष्टधीः। नाम्ना समुद्रदत्तोस्य भार्या सागरदत्तिका ॥६॥
 पुत्रः सागरदत्तोभूदेकदा जिनमन्दिरे। महापूजाविधौ नीलीं सर्वाभरणभूषिताम् ॥७॥
 कायोत्सर्गस्थितां दिव्यां तां विलोक्य सुनिर्मलाम्। जगौ सागरदत्तोसौ विह्वलीभूतमानसः ॥८॥
 किमेषा देवता काचित्किमेषा नागकन्यका। किमेषा खेचरीचारु-रूपसौन्दर्यमण्डिता ॥९॥
 तच्छ्रुत्वा तस्य मित्रेण प्रियदत्तेन जल्पितम्। जिनदत्तमहाश्रेष्ठि पुत्रीयं कुलदीपिका ॥१०॥
 तदाकर्ण्य तदासक्तो भूत्वैषा प्राप्यते कथम्। इति चिन्ताग्रहग्रस्तो जातोसौ दुर्बलस्तराम् ॥११॥
 हरिर्लक्ष्म्या हरो देवो गंगया जडरूपया। उर्वश्या खण्डितो ब्रह्मा हता कामेन के न च ॥१२॥

इस नगर में एक और वैश्य रहता था उसका नाम समुद्रदत्त था। यह जैनी नहीं था। इसकी बुद्धि बुरे उपदेशों को सुन-सुनकर बड़ी मट्टी हो गई थी। अपने हित की ओर तो कभी इसकी दृष्टि नहीं जाती थी। इसकी स्त्री का नाम सागरदत्ता था। इसके एक पुत्र था। उसका नाम सागरदत्त था। सागरदत्त एक दिन अचानक जिनमन्दिर में पहुँच गया। इस समय नीली भगवान की पूजा कर रही थी। वह एक तो स्वभाव से ही बड़ी सुन्दरी थी। इस पर उसने अच्छे-अच्छे रत्न, जड़े गहने और बहुमूल्य वस्त्र पहन रखे थे। इससे उसकी सुन्दरता और भी बढ़ गई थी। वह देखने वालों को ऐसी जान पड़ती थी, मानों कोई स्वर्ग की देव-बाला भगवान् की खड़ी-खड़ी पूजा कर रही है। सागरदत्त उसकी भुवनमोहिनी सुन्दरता को देखकर मुग्ध हो गया। काम ने उसके मन को बेचैन कर दिया। अपने पास ही खड़े हुए मित्र से कहा-यह है कौन? मुझे तो नहीं जान पड़ता कि यह मध्यलोक की बालिका हो। या तो यह कोई स्वर्ग-बाला है या नागकुमारी अथवा विद्याधर कन्या क्योंकि मनुष्यों में इतना सुन्दर रूप होना असम्भव है ॥६-९॥

सागरदत्त के मित्र प्रियदत्त ने नीली का परिचय देते हुए कहा कि यह तुम्हारा भ्रम है, जो तुम ऐसा कहते हो कि ऐसी सुन्दरता मनुष्यों में नहीं हो सकती। तुम जिसे स्वर्ग-बाला समझ रहे हो वह न स्वर्ग-बाला है, न नागकुमारी और न किसी विद्याधर वगैरह की पुत्री है किन्तु मनुष्यनी है और अपने इसी शहर में रहने वाले जिनदत्त सेठ के कुल की एकमात्र प्रकाश करने वाली उसकी नीली नाम की कन्या है। अपने मित्र द्वारा नीली का हाल जानकर सागरदत्त आश्चर्य के मारे दंग रह गया। साथ ही काम ने उसके हृदय पर अपना पूरा अधिकार किया। वह घर पर आया सही, पर अपने मन को वह नीली के पास ही छोड़ आया। अब वह दिन-रात नीली की चिन्ता में घुल-घुलकर दुबला होने लगा। खाना-पीना उसके लिए कोई आवश्यक काम नहीं रहा सच है-जिस काम के वश होकर श्रीकृष्ण लक्ष्मी द्वारा, महादेव गंगा द्वारा और ब्रह्मा उर्वशी द्वारा अपना प्रभुत्व, ईश्वरपना खो चुके तब बेचारे साधारण लोगों की तो कथा ही क्या कही जाये ॥१०-११॥

सागरदत्त की हालत उसके पिता को जान पड़ी। उसने एक दिन सागरदत्त से कहा-देखो, जिनदत्त जैनी है, वह कभी अपनी कन्या को अजैनी के साथ नहीं ब्याहेगा। इसलिए तुम्हें यह उचित नहीं कि तुम अप्राप्य वस्तु के लिए इस प्रकार तड़फ-तड़फ कर अपनी जान को जोखिम में डालों।

ततः समुद्रदत्तेन ज्ञात्वा पुत्रस्य वेदनाम्। प्रोक्तं भो पुत्र जैनोयं जिनदत्तो विचक्षणः ॥१३॥
 मुक्त्वा जैनं निजां पुत्रीं न ददात्येव कस्यचित्। इत्युक्त्वा श्रावकौ भूत्वा तदा तौ कपटोक्तिभिः ॥१४॥
 कन्यामादाय तां नीलीं नीलोत्पलदलेक्षणाम्। कल्याणविधिना जातौ पुनर्बुद्धकुधर्मकौ ॥१५॥
 युक्तं पापप्रयुक्तानां सद्धर्मे किं स्थिरा मतिः। सुप्रसिद्धमिदं नैव श्वोदरे पायसस्थितिः ॥१६॥
 तथा तैर्बुद्धभक्तैश्च नील्यास्तातस्य मन्दिरे। निषिद्धं गमनं दुष्टैः किं न कुर्वन्ति पापिनः ॥१७॥
 इत्येवं वञ्चने जाते जिनदत्तो वदत्यसौ। कूपादौ पतिता पुत्री नीता मे वा यमेन च ॥१८॥
 संगतिर्दुर्जनानां हि शोकं यच्छति दारुणम्। अधः स्थितोपि वन्धिः स्यादूर्ध्वं कालुष्यकारणम् ॥१९॥

तुम्हें यह अनुचित विचार छोड़ देना चाहिए। यह कहकर समुद्रदत्त ने पुत्र के उत्तर पाने की आशा से उसकी ओर देखा। पर जब सागरदत्त उसकी बात का कुछ भी जवाब न देकर नीची नजर किए ही बैठा रहा। तब समुद्रदत्त को निराश हो जाना पड़ा। उसने समझ लिया कि इसके दो ही उपाय हैं या तो पुत्र के जीवन की आशा से हाथ धो बैठना या किसी तरह सेठ की लड़की के साथ इसको ब्याह देना। पुत्र के जीने की आशा को छोड़ बैठने की अपेक्षा उसने किसी तरह नीली के साथ उसका ब्याह कर देना ही अच्छा समझा। सच है, सन्तान का मोह मनुष्य से सब कुछ करा सकता है। इस सम्बन्ध के लिए समुद्रदत्त के ध्यान में एक युक्ति आई। वह यह कि इस दशा में उसने अपना और पुत्र का जैनी बन जाना बहुत ही अच्छा समझा और वे बन भी गए। अब से वे मन्दिर जाने लगे, भगवान् की पूजा करने लगे, स्वाध्याय, व्रत, उपवास भी करने लगे। मतलब यह कि थोड़े ही दिनों में पिता-पुत्र ने अपने जैनी हो जाने का लोगों को विश्वास करा दिया और धीरे-धीरे जिनदत्त से भी इन्होंने अधिक परिचय बढ़ा लिया। बेचारा जिनदत्त सरल स्वभाव का था और इसीलिए वह सब को अपना जैसा ही सरल-स्वभावी समझता था। यही कारण हुआ कि समुद्रदत्त का चक्र उस पर चल गया। उसने सागरदत्त को अच्छा पढ़ा लिखा, खूबसूरत और अपनी पुत्री के योग्य वर समझकर नीली को उसके साथ ब्याह दिया। सागरदत्त का मनोरथ सिद्ध हुआ। उसे नया जीवन मिला। इसके बाद थोड़े दिनों तक तो पिता-पुत्र ने और अपने को ढोंगी वेष में रखा, पर फिर कोई प्रसंग लाकर वे पीछे बुद्ध धर्म के मानने वाले हो गए। सच है, मायाचारियों-पापियों की बुद्धि अच्छे धर्म पर स्थिर नहीं रहती। यह बात प्रसिद्ध है कि **कुत्ते के पेट में घी नहीं ठहरता** ॥१२-१६॥

जब इन पिता-पुत्र ने जैनधर्म छोड़ा तब इन दुष्टों ने यहाँ तक अन्याय किया कि बेचारी नीली का उसके पिता के घर जाना-आना भी बन्द कर दिया। सच है, पापी लोग क्या नहीं करते! जब जिनदत्त को इनके मायाचार का यह हाल जान पड़ा तब उसे बहुत पश्चाताप हुआ, बेहद दुःख हुआ वह सोचने लगा-क्यों मैंने अपनी प्यारी पुत्री को अपने हाथों से कुँए में ढकेल दिया? क्यों मैंने उसे काल के हाथ सौंप दिया? सच है दुर्जनों की संगति से दुःख के सिवा कुछ हाथ नहीं पड़ता। नीचे जलती हुई अग्नि भी ऊपर की छत को काली कर देती है ॥१७-१९॥

सा नीली निजनाथस्य भूत्वा प्राणप्रिया तदा। जिनधर्मं प्रकुर्वाणा स्थिता भिन्नगृहे मुदा ॥२०॥
 नित्यं श्रीमज्जिनेन्द्राणां पूजां कल्याणदायिनीम्। पात्रदानं व्रतं शीलं सोपवासं सुनिर्मलम् ॥२१॥
 साधर्मिकेषु वात्सल्यं शर्मदं शल्यवर्जितम्। इत्यादिधर्मसद्भावं पालयामास भक्तितः ॥२२॥
 एकदा श्वसुरेणैव संविचार्य स्वमानसे। संसर्गाद्दर्शनाद्धर्म-श्रुतेर्वा बुद्धभक्तिका ॥२३॥
 भविष्यतीति सा प्रोक्ता नीली पुत्रि गुणोज्ज्वले। ज्ञानिनां वन्दकानां त्वं भोजनं देहि नो मतात् ॥२४॥
 ततस्तया समाहूय वन्दकान्कृतदंभकान्। तत्पादत्राणखण्डानि कृत्वा मृष्टानि सद्रसैः ॥२५॥
 तेषां भोक्तुं प्रदत्तानि तैः कृत्वा भोजनं मुदा। गच्छद्भिश्चेति पृष्टं क्व पादत्राणे तयोदिते ॥२६॥
 भवन्तस्त्वेव जानन्ति ज्ञानिनो यतयो भुवि। ज्ञानं नास्ति यदि व्यक्त्यै कुर्वन्तु वमनं द्रुतम् ॥२७॥

जिनदत्त ने जैसा किया उसका पश्चाताप उसे हुआ। पर इससे क्या नीली दुःखी हो? उसका यह धर्म था क्या? नहीं! उसे अपने भाग्य के अनुसार जो पति मिला, उसे ही वह अपना देवता समझती थी और उसकी सेवा में कभी रत्तीभर भी कमी नहीं होने देती थी। उसका प्रेम पवित्र और आदर्श था। यही कारण था कि वह अपने प्राणनाथ की अत्यन्त प्रेमपात्र थी। विशेष इतना था कि नीली ने बुद्ध धर्म के मानने वालों के यहाँ आकर भी जिनधर्म को न छोड़ा था। वह बराबर भगवान् की पूजा, शास्त्र स्वाध्याय, व्रत, उपवास आदि पुण्यकर्म करती थी, धर्मात्माओं से निष्कपट प्रेम करती थी और पात्रों को दान देती थी। मतलब यह कि अपने धर्म-कर्म में उसे खूब श्रद्धा थी और भक्तिपूर्वक वह उसे पालती थी। पर खेद है कि समुद्रदत्त की आँखों में नीली का यह कार्य भी खटका करता था। उसकी इच्छा थी कि नीली भी हमारा ही धर्म पालने लगे और इसके लिए उसने यह सोचकर, कि बुद्ध साधुओं की संगति से या दर्शन से या उनके उपदेश से यह अवश्य बुद्ध धर्म को मानने लगेगी। एक दिन नीली से कहा-पुत्री, तू पात्रों को तो सदा दान दिया करती है, तब एक दिन अपने धर्म के अनुसार बुद्ध साधुओं को भी तो दान दे ॥२०-२४॥

नीली ने श्वसुर की बात मान ली। पर उसे जिनधर्म के साथ उनकी यह ईर्ष्या ठीक नहीं लगी और इसीलिए उसने कोई उपाय भी अपने मन में सोच लिया, जिससे फिर कभी उससे ऐसा मिथ्या आग्रह करके उसके धर्म पालन में किसी प्रकार की बाधा न दी जाए। फिर कुछ दिनों बाद उसने मौका देखकर कुछ बुद्ध साधुओं को भोजन के लिए बुलाया। वे आए। उनका आदर-सत्कार भी हुआ। वे एक अच्छे सुन्दर कमरे में बैठायें गए। इधर नीली ने उनके जूतों को एक दासी द्वारा मँगवा लिया और उनका खूब बारीक बूरा बनवाकर उसके द्वारा एक किस्म की बहुत ही बढ़िया मिठाई तैयार करवाई इससे जब वे साधु भोजन करने को बैठे तब और-और व्यंजन-मिठाइयों के साथ वह मिठाई भी उन्हें परोसी गई सब ने उसे बहुत पसन्द किया। भोजन समाप्त हुए बाद जब जाने की तैयारी हुई, तब वे देखते हैं तो जूता नहीं हैं। उन्होंने पूछा-जूते कहाँ गए? भीतर से नीली ने आकर कहा-महाराज, सुनती हूँ, साधु लोग बड़े ज्ञानी होते हैं? तब क्या आप अपने जूतों का हाल नहीं जानते हैं? और यदि आपको

वर्तेते भवतां तुन्दे तत्सुस्वादुविलोभिनाम्। कृते तैर्वमने दृष्टस्तत्खण्डानां समूहकः ॥२८॥
 बौद्धानां मानभङ्गेन तदा स्वशुरवर्गके। रुष्टे सागरदत्तस्य भगिन्यादिभिरर्जितम् ॥२९॥
 महापापं वृथा दत्वा तस्याः शीलस्य दूषणम्। पापिनां न भयं चित्ते साधूनां दोषभाषणे ॥३०॥
 असत्यदोषके तस्मिन्प्रसिद्धे सा गुणोज्ज्वला। दोषोच्छेदे ममाहार-प्रवृत्तिर्नान्यथेति च ॥३१॥
 संन्यासं श्रीजिनस्याग्रे गृहीत्वा द्विविधं स्थिता। कायोत्सर्गेण मेरोर्वा चूलिका चारुनिश्चला ॥३२॥
 सत्यं सतां सुखे दुःखे प्रध्वस्तापत्सहस्रकः। शरणं श्रीजिनस्त्वेव नित्यं शक्रैः समर्चितः ॥३३॥
 ततस्तच्छीलमाहात्म्यात्क्षुभिता पुरदेवता। ससंभ्रमं समागत्य तत्समीपं जगौ निशि ॥३४॥
 सती शिरोमणे मैवं कुरु प्राणविसर्जनम्। अहं राज्ञः प्रधानानां प्रजानां स्वप्नमद्भुतम् ॥३५॥
 ददामीति नगर्याश्च प्रतोत्यः सकला ध्रुवम्। महासती यदा वाम-पादसंस्पर्शनं मुदा ॥३६॥
 करिष्यति तदोद्घाटं यास्यन्त्येताः प्रवेगतः। त्वं पादेन प्रतोलीनां कुर्याः संस्पर्शनं शुभे ॥३७॥

इतना ज्ञान नहीं तो मैं बतला देती हूँ कि जूते आपके पेट में हैं। विश्वास के लिए आप उल्टी कर देखें। नीली की बात सुनकर उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने उल्टी करके देखा तो उन्हें जूतों के छोटे-छोटे बहुत से टुकड़े दीख पड़े। इससे उन्हें बहुत लज्जित होकर अपने स्थान पर आना पड़ा ॥२५-२८॥

नीली की इस कार्यवाही से, अपने गुरुओं के अपमान से समुद्रदत्त, नीली की सासू, ननद आदि को बहुत ही गुस्सा आया। पर भूल उनकी जो नीली द्वारा उसके धर्मविरुद्ध कार्य उन्होंने करवाना चाहा। इसलिए वे अपना मन मसोस कर रह गए, नीली से वे कुछ नहीं कह सके। पर नीली की ननद को इससे संतोष नहीं हुआ। उसने कोई ऐसा ही छल-कपट कर नीली के माथे व्यभिचार का दोष मढ़ दिया। सच है, सत्पुरुषों पर किसी प्रकार का ऐब लगा देने में पापियों को तनिक भी भय नहीं रहता। बेचारी नीली अपने पर झूठ-मूठ महान् कलंक लगा सुनकर बड़ी दुःखी हुई। उसे कलंकित होकर जीते रहने से मर जाना ही उत्तम जान पड़ा। वह उसी समय जिनमन्दिर में गई और भगवान् के सामने खड़ी होकर उसने प्रतिज्ञा की, कि मैं इस कलंक से मुक्त होकर ही भोजन करूँगी, इसके अतिरिक्त मुझे इस जीवन में अन्न-पानी का त्याग है। इस प्रकार वह संन्यास लेकर भगवान् के सामने खड़ी हुई उनका ध्यान करने लगी। इस समय उसकी ध्यान मुद्रा देखने के योग्य थी। वह ऐसी जान पड़ती थी मानों सुमेरु पर्वत की स्थिर और सुन्दर जैसी चूलिका हो। सच है, उत्तम पुरुषों को सुख या दुःख में जिनेन्द्र भगवान् ही शरण होते हैं, जो अनेक प्रकार की आपत्तियों के नष्ट करने वाले और इन्द्रादि देवों द्वारा पूज्य हैं ॥२९-३३॥

नीली की इस प्रकार दृढ़ प्रतिज्ञा और उसके निर्दोष शील के प्रभाव से पुरदेवी का आसन हिल गया। वह रात के समय नीली के पास आई और बोली-सतियों की शिरोमणि, तुझे इस प्रकार निराहार रहकर प्राणों को कष्ट में डालना उचित नहीं। सुन, मैं आज शहर के बड़े-बड़े प्रतिष्ठित पुरुषों को तथा राजा को एक स्वप्न देकर शहर के सब दरवाजे बन्द कर दूँगी। वे तब खुलेंगे जब कि उन्हें कोई शहर की महासती अपने पाँवों से छुएगी। सो जब तुझे राजकर्मचारी यहाँ से उठाकर ले जाय तब तू

इत्युक्त्वा स्वप्नकं दत्त्वा राजादीनां सुनिश्चलम्। कीलित्वा सा प्रतोलीस्ता गतादृश्यं सुराङ्गना ॥३८॥
 प्रभाते कीलिता दृष्ट्वा प्रतोलीभूमिपादिभिः। स्मृत्वा तं रात्रिजं स्वप्नं सर्वैस्तत्पुरयोषिताम् ॥३९॥
 कारितश्चरणैर्घातः प्रतोलीनां तथापि सा। नोद्घाटिता कयाप्येका नाल्पपुण्यैर्यशोर्ज्यते ॥४०॥
 पश्चादुत्क्षिप्य नीता सा नीली सच्छीलशालिनी। तथा स्वपादसंस्पर्शात्सर्वाश्चोद्घाटिता हि ताः ॥४१॥
 शलाकया यथा वैद्यः करोत्युद्घाटनं दृशाम्। तथा नीली स्वपादेन प्रतोल्युद्घाटनं व्यधात् ॥४२॥
 तदा स्वशीलमाहात्म्य-प्रहर्षितजगज्जना। सा नीली वस्तुसन्दोहै-नरेन्द्राद्यैः समर्चिता ॥४३॥
 जय त्वं जिननाथस्य चरणाम्भोजषट्पदी। भो मातस्तव शीलस्य माहात्म्यं केन वर्ण्यते ॥४४॥
 इत्यादिभिः शुभैर्वाक्यैः सा सती शीलमण्डिता। सर्वैर्धर्मानुरागेण संस्तुता सज्जनैर्मुदा ॥४५॥
 स जयति जिनदेवः सर्वदेवेन्द्रवन्द्यो विमलतरगिरो वै यस्य विश्वोपकाराः।
 तदुदितवरशीलं पालितं शर्ममूलं दिशतु शुचिजनानां स्वर्गमोक्षोरुलक्ष्मीम् ॥४६॥
 इति कथाकोशे शीलप्रभाववर्णने नीलीश्राविकाकथा समाप्ता।

उनका स्पर्श करना। तेरे पाँव के लगते ही दरवाजे खुल जायेंगे और तू कलंक मुक्त होगी। यह कहकर पुरदेवी चली गई और सब दरवाजों को बन्द कर उसने राजा वगैरह को स्वप्न दिया ॥३४-३८॥

सबेरा हुआ। कोई घूमने के लिए, कोई स्नान के लिए और कोई किसी काम के लिए शहर के बाहर जाने लगे। जाकर देखते हैं तो शहर से बाहर होने के सब दरवाजे बन्द हैं। सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। बहुत कुछ कोशिशों की गई; पर एक भी दरवाजा नहीं खुला। सारे शहर में शोर मच गया। बात ही बात में राजा के पास खबर पहुँची। इस खबर के पहुँचते ही राजा को रात में आए हुए स्वप्न की याद हो उठी। उसी समय एक बड़ी भारी सभा बुलाई गई राजा ने सबको अपने स्वप्न का हाल कह सुनाया। शहर के कुछ प्रतिष्ठित पुरुषों ने भी अपने को ऐसा ही स्वप्न आया बतलाया। आखिर सब की सम्मति से स्वप्न के अनुसार दरवाजों का खोलना निश्चित किया गया। शहर की स्त्रियाँ दरवाजों का स्पर्श करने को भेजी गई सबने उन्हें पाँवों से छुआ, पर दरवाजों को कोई नहीं खोल सकी। तब किसी ने, जो कि नीली के संन्यास का हाल जानता था, नीली को उठा ले जाकर उसके पावों को स्पर्श करवाया। दरवाजे खुल गए। जैसे वैद्य सलाई के द्वारा आँखों को खोल देता है उसी तरह नीली ने अपने चरणस्पर्श से दरवाजों को खोल दिया। नीली के शील की बहुत प्रशंसा हुई। नीली कलंक मुक्त हुई। उसके अखण्ड शीलप्रभाव को देखकर लोगों को बड़ी प्रसन्नता हुई। राजा तथा शहर के और प्रतिष्ठित पुरुषों ने बहुमूल्य वस्त्राभूषणों द्वारा नीली का खूब सत्कार किया और इस शब्दों में उसकी प्रशंसा की “हे जिनभगवान् के चरणकमलों की भौरी, तुम खूब फलो, फूलो माता, तुम्हारे शील का माहात्म्य कौन कह सकता है।” सती नीली अपने धर्म पर दृढ़ रही, उससे उसकी बड़े-बड़े प्रतिष्ठित पुरुषों ने प्रशंसा की। इसलिए सर्वसाधारण को भी सती नीली का पथ ग्रहण करना चाहिए ॥३९-४५॥

जिनके वचन सारे संसार का उपकार करने वाले हैं, जो स्वर्ग के देवों और बड़े-बड़े राजा महाराजाओं से पूज्य हैं और जिनका किया हुआ उपदेश पवित्र शील-ब्रह्मचर्य स्वर्ग तथा परम्परा मोक्ष का देने वाला है, वे जिनभगवान् संसार में सदा काल रहें और उनके द्वारा कर्म-परवश जीवों को कर्म पर विचार प्राप्त करने का पवित्र उपदेश सदा मिलता रहे ॥४६॥

२९. कडारपिङ्गस्य कथा ।

नत्वारहतं जगत्पूतं भारतीगुरुपङ्कजम् । वक्ष्ये कडारपिङ्गस्या-ब्रह्मदोषं कथानकम् ॥१॥
 कांपिल्यनगरे राजा नरसिंहो विचक्षणः । प्राज्यं राज्यं करोत्युच्चैर्धर्मकर्मपरायणः ॥२॥
 तन्मन्त्री सुमतिर्नाम्ना धनश्रीः प्राणवल्लभा । तयोः कडारपिङ्गाख्यः पुत्रो जातोतिलम्पटः ॥३॥
 तत्रैव नगरे श्रेष्ठी संजातोत्यन्तधार्मिकः । सुधीः कुबेरदत्ताख्यो दानपूजाविराजितः ॥४॥
 तस्य भार्याभवत्सार-पूर्वपुण्येन संयुता । प्रियंगुसुन्दरी नाम्ना साध्वी सद्रूपमण्डिता ॥५॥
 एकदा तां समालोक्य श्रेष्ठिनीं गुणशालिनीम् । कुधीः कडारपिङ्गोसौ संजातो विकलाशयः ॥६॥
 गत्वा गृहं स्थितो याव-द्धनश्रीः प्राह तं प्रति । अहो पुत्र त्वकं कस्माद् दृश्यते दुर्मनास्तराम् ॥७॥
 तेनोक्तं श्रेष्ठिभार्यासौ प्राप्यतेऽत्र मया यदि । तदा मे जीवितं मात-नान्यथेति सुनिश्चितः ॥८॥

२९. कडारपिंग की कथा

अर्हन्त, जिनवाणी और गुरुओं को नमस्कार कर, कडारपिंग की, जो कि स्वदारसन्तोषव्रत-ब्रह्मचर्य से भ्रष्ट हुआ है, कथा लिखी जाती है। कांपिल्य नाम का एक प्रसिद्ध शहर था। उसके राजा का नाम नरसिंह था। नरसिंह बुद्धिमान् और धर्मात्मा थे। अपने राज्य का पालन वे नीति के साथ करते थे। इसलिए प्रजा उन्हें बहुत चाहती थी ॥१-२॥

राजमन्त्री का नाम सुमति था। इनके धनश्री स्त्री और कडारपिंग नामक एक पुत्र था। कडारपिंग का चाल-चलन अच्छा नहीं था। वह बड़ा कामी था। इसी नगर में एक कुबेरदत्त सेठ रहता था। यह बड़ा धर्मात्मा और पूजा, प्रभावना करने वाला था। इसकी स्त्री प्रियंगुसुन्दरी सरल स्वभाव की, पुण्यवती और बहुत सुन्दर थी ॥३-५॥

एक दिन कडारपिंग ने प्रियंगुसुन्दरी को कहीं जाते देख लिया। उसकी रूप-मुधरिमा को देखकर इसका मन बेचैन हो उठा। यह जिधर देखता उधर ही इसे प्रियंगुसुन्दरी दिखने लगी। प्रियंगुसुन्दरी के सिवा इसे और कोई वस्तु अच्छी न लगने लगी। काम ने इसे आपे से भुला दिया। बड़ी कठिनता से उस दिन वह घर पर पहुँच पाया। उसे इस तरह बेचैन और भ्रम बुद्धि देखकर इसकी माँ को बड़ी चिन्ता हुई उसने इससे पूछा-कडार, क्यों आज एकाएक तेरी यह दशा हो गई? अभी तो तू घर से अच्छी तरह गया था और थोड़ी ही देर में तेरी यह हालत कैसे हुई? बतला तो, हुआ क्या? क्यों तेरा मन आज इतना खेदित हो रहा है? कडारपिंग ने कुछ न सोचा अथवा यों कह लीजिए कि सोच विचार करने की बुद्धि ही उसमें न थी। यही कारण था कि उसने, कौन पूछने वाली है, इसका भी कुछ ख्याल न कर कह दिया कि कुबेरदत्त सेठ की स्त्री को मैं यदि किसी तरह प्राप्त कर सकूँ, तो मेरा जीना हो सकता है। सिवा इसके मेरी मृत्यु अवश्यंभावी है। नीतिकार कहते हैं कि काम से अन्धे हुए लोगों को धिक्कार है जो लज्जा और भय रहित होकर फिर अच्छे और बुरे कार्य को भी नहीं सोचते।